जनजाति, पारिस्थितिकी एवं विकास : सोनभद्र क्षेत्र का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

TRIBE, ECOLOGY AND DEVELOPMENT : A SOCIOLOGICAL STUDY OF SONBHADRA REGION

शोध-सारांश

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ से
समाजशास्त्र विषय में पीएच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

शोधार्थी

दीपक कुमार खरवार

नामांकन संख्या–378/17

शोध निर्देशक

प्रो० विभूति भूषण मलिक

BABASAHEB
BHIMRAO
AMBEDKAR
UNIVERSITY

LUCKNOW

प्रज्ञा शील करुणा

ESTABLISHED 1996

समाजशास्त्र विभाग
अम्बेडकर अध्ययन विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ (उ०प्र०)

2022

शोध सारांश

प्रस्तावना

पारिस्थितिकी का तात्पर्य, जीवों एवं उनके पर्यावरण के बीच के सहसम्बन्धों से हैं। समाजशास्त्र में पारिस्थितिकी का सरोकार मानव एवं उनके पर्यावरण के बीच के अंतर्सम्बन्ध से हैं। मनुष्य अपनी पृथक संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था के कारण एक दूसरे से अलग समूह में रहता है इसलिए यहाँ समाजशास्त्र का केन्द्र–बिन्दु समूह या समुदायों तथा उनके प्राकृतिक वातावरण के बीच के अतःसंबंधों से है। यह संबंध दो तरफा या दोहरा होता है। एक तरफ एक समूह या समुदाय की संस्कृति पर्यावरण द्वारा आकारित या विकसित होती हैं। ठीक उसी समय दूसरी तरफ मानव भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। इस तरह दोनों के बीच का सम्बन्ध एक समान है। बहुत सारे देश है जंहा यह सम्बन्ध संतुलित है जबकि कुछ देशों में यह संबंध असंतुलित है। इसके अलावा ठीक यही स्थिति किसी देश के अन्दर समूह या समुदाय तथा धर्म के सम्बन्ध में भी है। भारत इसका अपवाद नही है। उसी प्रकार जनजातीय समूहों तथा उनके पर्यावरण के साथ सम्बन्ध एवं व्यवहार का भी एक अलग व्यवस्था हैं। जनजातियों को पारिस्थितिकी अनिवार्यता के साथ उनकी आवश्यकताओं को पारम्परिक तरीके से संतुलित करने के रूप में देखा जा सकता हैं। कहा जाता है कि जनजाति अपनी भावी–पीढ़ी के लिए वनों का संरक्षण एक संसाधन के रूप में करते हैं और उनकी वनों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर एक रचनात्मक निर्भरता पायी जाती हैं। औद्योगीकरण के कारण विकास को गति देने के लिए जंगलों की कटाई, एवं इनका विस्थापन किए जाने के कारण प्रकृति संसाधनों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ रहा हैं।

जिस तरह से जनजातियों की परिकल्पना प्रकृति के साथ उनके सामाजिक, भौतिक एवं सांस्कृतिक निकटता के साथ की जाती है वह बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि जनजातियों को ऐसे समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो सरल या आदिम परिस्थितियों में रहते है तथा अपनें अस्तित्व एवं आजीविका के लिए मुख्य रूप से प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। प्रकृति के साथ उनके सहजीवी संबंध होते

है। प्रकृति के साथ जनजातियों के सम्बन्धों को दो तरह से देखा या अन्वेषण किया जा सकता है। पहला तरीका तो यह है कि प्रकृति एवं पर्यावरण से सम्बन्धित चीजें जो जनजातियों की पहेलियों, कहानियों, मिथकों, किंवदतियों, सहभोजों और त्यौहारों में व्यक्त और चित्रित की गयी हैं उसके माध्यम से जान सकते है। दूसरा, उस क्षेत्र का अन्वेषण कर सकते है जिसमें जनजातियां अपने दिन–प्रतिदिन के अस्तित्व के लिए प्रकृति एवं पर्यावरण पर निर्भर रहती है जो कि उनके जीवन की अस्तित्व की स्थितियों को दर्शाता हैं।

प्रकृति पर जनजातियों की निर्भरता उनकी दैनिक आजीविका की जरूरतों से प्रदर्शित होता है जो उनके भोजन से शुरू होता हैं। खाद्य सामग्री उन्हें जंगलो से प्राप्त होता हैं। जनजातियों का भोजन व्यवहार एक प्रकार से प्रकृति के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ा होता हैं। भोजन के अतिरिक्त जनजाति अपने झोपड़ियों या घरों के निर्माण तथा दैनिक आर्थिक व घरेलू गतिविधियों के लिए आवश्यक उपकरण एवं हथियार के लिए जो कच्चे माल चाहिए होता है उसके लिए भी वह जंगलो पर निर्भर रहते हैं। शिकार, मछली पकड़नें तथा भोजन एकत्र करने के लिए विभिन्न प्रकार के संसाधन उन्हें वनों से प्राप्त होता हैं। यहाँ तक कि कला की वस्तुएं, कलाकृतिया, संगीत वाद्ययंत्र एवं आभूषण भी वनोपज से बनाये जाते हैं। वास्तव में जनजातियों की कुल भौतिक संस्कृति, वनों एवं वनोपज पर निर्भर होती हैं। वनों के साथ जनजातियों के सम्बन्ध को उनके जीवन की सम्पूर्ण पद्धति को अलग नही किया जा सकता हैं। शिकार और भोजन संग्रह, स्थायी और कम स्थायी कृषि उत्पादन और व्यापार अलग–अलग मात्राओं में लगभग सभी जनजातियों में विद्यमान हैं। आत्मनिर्भरता और अपने जीने के लिए प्राकृतिक संसाधनो का संतुलित दोहन जनजाति अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता है। इनकी अर्थव्यवस्था आमतौर पर कम जटिल होती है और इनमें प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग की भावना ज्यादा होती हैं। जनजातियों की आर्थिक और सामाजिक प्रथाए प्राकृतिक परिवेश और स्थानीय परिस्तिथियों से निर्धारित होती है।

समस्या का कथन

भारत में जनजातियों के लिए किसी भी नीति निर्माण में यह द्वन्द रहा है कि किस तरह से यह संतुलन बनाया जाए कि जनजातियों की पहचान, संस्कृति एवं मूल्यो का संरक्षण हो, मुख्यधारा की जीवनशैली के सैलाब से जनजातियों की रक्षा की जा सके एवं उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और आय सृजन तक पहुँच को सुनिश्चित किया जा सके और आगे बढ़ाया जा सके जिससे कि उनके जीवन में बेहतरी आ सके। प्रत्येक जनजाति आमतौर पर एक–दूसरे से भाषाओ, बोलियों, रीति–रिवाजो, सांस्कृतिक प्रथाओं एवं जीवनशैलियों मे काफी अलग–अलग है। इस विशाल विविधता को बनाये रखना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि शिक्षा, स्वास्थ्य, और आय सृजन के क्षेत्र में विकास के लाभ को पहुँचाते समय, उनका मुख्यधारा से जुड़ना और परिणामतः विविधता मे कमी आना अपरिहार्य है।

स्वतंत्रता के पश्चात् से जनजातीय क्षेत्रों में बुनियादी ढाचें के बंदोबस्त हेतु स्थितियां अनुकूल नही रही है। जनजातीय क्षेत्रों में सामाजिक एवं भौतिक अधोरसंरचना अपर्याप्त रही है एवं अन्य क्षेत्रों की तुलना में निम्न–स्तरीय रही है, जिसके फलस्वरूप जनजाति अर्थव्यवस्था में संस्थागत वित्त सहित धन को अर्थपूर्ण तरीके से अवशोषित करने के लिए क्षमता की कमी रही है। बुनियादी सुविधाओ के अन्तर के मामले में जनजाति क्षेत्रों में एवं देश के बाकी हिस्सों के बीच अन्तर लगातार बढ़ता रहा है। जहाँ देश के अन्य जगहों पर सार्वजानिक–निजी साझेदारी के माध्यम से निजी क्षेत्र ने बुनियादी ढांचे के विकास में योगदान दिया है वही जनजातीय क्षेत्र इससे लगभग अछूते रहे है।

आजादी के बाद जनजातियों की सुरक्षा तथा विकास के लिए विभिन्न प्रावधान किये गये है। संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों द्वारा समय–समय पर अनेक प्रकार की योजनाएं तथा कार्यक्रम जनजातीय क्षेत्रों में चलाए जाते रहे हैं। लेकिन इतने सारे संवैधानिक प्रावधानों तथा योजनाओं के उपरान्त भी केन्द्र तथा राज्य जनजातियों के वांछित विकास को प्राप्त नहीं कर पाया है।

हालाँकि भारत के जनजातियों के जीविकोपार्जन का साधन प्राकृतिक परिवेश के निकट ही होता रहा है, जहाँ वे जंगलो से कंद–मूल, फल तथा मधु आदि को प्राप्त करते रहे है। जंगलो के कुछ हिस्सों को काटकर झूम–खेती करते थे। इसके अतिरिक्त भारत की कुछ जनजातियों ने स्थायी हल कृषि को भी अपना लिया है तथा इसके साथ ही उनकी जीवन–निर्वाह का एक साधन पशुचारण भी है। जब तक जनजातियों पर सरकार का नियंत्रण नहीं था तब तक जनजाति एक सुखमय जीवन व्यतीत करते थे लेकिन ब्रिटिशों के आगमन तथा भारत के स्वतंत्रता के पश्चात् जनजातियों के ऊपर पहले अंग्रेजों ने तथा उसके बाद सरकार ने अनेक प्रकार के नियंत्रण स्थापित कर दिए। इस प्रकार जंगलों पर से जनजातियों से अधिकार छिन लिया गया और झूम–खेती पर पूर्ण रूप से रोक लगा दिया गया। जिससे जंगलो पर से जनजातियों के अधिकार समाप्त हो जाने के बाद उनकी की अर्थव्यवस्था का जो साधन था जैसे जंगलो से मधु इकठ्ठा करना, पेड़ो की पत्तियों से बीड़ी बनाना, टोकरी, रस्सी, चटाई, हथियार तथा संगीत वाद्ययंत्र इत्यादि समाप्त हो गया क्योंकि जंगलो में इनका प्रवेश निषेध कर दिया गया और सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनो के हवाले जंगलो को सौप दिया गया। जिन्होंने विकास के नाम पर जंगलो की अत्यधिक मात्रा में कटाई की या इतना अधिक दोहन किया कि जिससे वहाँ की पारिस्थितिकी तंत्र में अनेक प्रकार का विक्षोभ उत्पन्न हो गया।

विकास के नाम पर नदियों पर बांध का निर्माण किया गया जिससे जनजातियों को अपना मूल स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर जाना पड़ा तथा दूसरी तरफ हमें यह भी देखने को मिलता है कि जहाँ जनजातीय समुदायों का निवास स्थान होता है उस क्षेत्र में सामान्यतः बहुमूल्य समझे जाने वाले खनिज पदार्थों की मात्रा अत्याधिक होती है। इसलिए वहाँ पर भी सरकारी संगठनों द्वारा खनन तथा अन्य विकास परियोजनाओं के नाम पर जनजातियों का शोषण किया जाने लगता है और उनको ही उनके मूल स्थान से बेदखल कर दिया जाता है।

इस तरह हम समझ सकते है कि जो जनजाति समाज स्वतंत्रता से पूर्व अपने संस्कृति और सभ्यता के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों या पर्यावरण को बचाये हुए थे तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को समायोजित किये

हुए थे वह सब ब्रिटिशों के आगमन और स्वतंत्रता के बाद सरकार की नीतियों के कारण बदल गया। अब इनके जीविकोपार्जन का साधन प्रकृतिक संसाधन नहीं रहे तथा इससे जुड़ी जो इनकी संस्कृति थी उसमें भी परिवर्तन आ गया, अब जनजातीय समाज का प्रकृति परिवेश के साथ जो घनिष्ठ सम्बन्ध था उससे उनका अलगाव हो गया है क्योंकि अब जनजातियों को अपने जीविकोपार्जन के लिए शहरों के किसी कल–कारखाने में काम करने के लिए जाना पड़ता है। जहाँ कारखाने के मालिकों द्वारा इनका शोषण किया जाता है। इनके पास अपनी जमींन भी नही रही जिस पर ये खेती करके अपनी जीविका चला सके और जिनके पास है भी उनके पास उतना धन नहीं है इसलिए ये प्रकृति पर ही निर्भर रहते है। अतः विकास के नाम पर जनजातीय क्षेत्रों में हस्तक्षेप स्थानीय लोगों को पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी प्रभावित हुआ है, जिसका प्रभाव वहां के जनजातीय समुदायों पर पड़ा है। जो जनजातिय लोगों में अलगाव तथा वंचना की स्थिति को पैदा कर दिया है। प्रस्तुत शोध में सोनभद्र क्षेत्र के जनजाति, विकास एवं पारिस्थितिकी को जानने का प्रयास किया गया हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

प्रस्तुत शोध में जनजाति, विकास एवं पारिस्थितिकी तीनों एक–दूसरे को किस हद तक प्रभावित करते है को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जानने का प्रयास किया गया है जो अभी तक के अध्ययनों में हमें देखने को नहीं मिलता है। जनजातीय समाज में हो रहे विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों एवं उससे उत्पन्न उनके अन्दर विरोधाभासो को समझने का प्रयास किया गया है। जो जनजाति समाज अपनी संस्कृति और सभ्यता के माध्यम से पर्यावरण को बचाये हुए थे अब वह पर्यावरणीय चेतना जनजातियों में कम दिखायी देती है तथा इसके साथ ही हमें इस अध्ययन से यह भी समझने में मदद मिलेगी कि पहले जो जनजातीय समाज पूर्ण रूप से अपनी आजीविका के लिए जंगल, पहाड़ और नदियों पर निर्भर रहता था वह अब इसके लिए शहरों और औद्योगिक क्षेत्रों की तरफ क्यों अग्रसर हो रहे है और अपने परम्परागत काम को छोड़ कर कल–कारखानों में काम क्यों कर रहे है।

इस शोध के माध्यम से आधुनिकीकरण के कारण जनजातियों के अंदर कम हो रही पर्यावरणीय चेतना के कारणों का पता लगाना तथा इस चेतना को किस प्रकार उनमें पुनः जागृत किया जाय जिससे जनजातीय क्षेत्रों का पर्यावरण इनके अनुकूल हो सके तथा शहरों के तरफ हो रहे जनजातियों के विस्थापन या पलायन को रोकने में इस अध्ययन से सहायता मिलेगी। वर्तमान में हो रहे जनजातियों के शोषण तथा उनके शोषणकर्ताओ में संघर्ष की अपेक्षा मानवीय संवेदना स्थापित करना है। पर्यावरण के प्रति जनजातियों की समृद्ध विरासत एवं मानव सभ्यता पर उनके उपकारो के बारे में, उद्योग जगत के प्रमुखों तथा अन्य सामाजिक सत्ताओं के प्रमुखों से संवाद स्थापित करके प्रशासन को भी मानवीय बनाने की दिशा में इससे पहल करने में सहायता मिलेगी।

उद्देश्य

- जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं उनके पिछड़ेपन के मुख्य कारणों का पता लगाना।
- जनजातीय समाज किस प्रकार पर्यावरण से ओत–प्रोत है, जिससे उनका सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन परिभाषित एवं परिचालित होता है, इसका विश्लेषण करना।
- सरकार की नीतियां जनजातियों के विकास में किस हद तक सहायक रही है इसका अध्ययन करना।
- जनजाति समाज ने किस तरह से सरकार के विकासमूलक योजनाओं के साथ खुद को समायोजित कर पाया है या समायोजित नहीं कर पाया है, इसका विश्लेषण करना तथा इससे उत्पन्न विरोधाभासो का पता लगाना।

उपकल्पना

- जनजातीय समाज आज भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं।
- जनजातीय समाज के सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में पर्यावरण का महत्वपूर्ण भूमिका है।

- जनजातियों के विकास में सरकार की नीतियां आशिंक रूप से सफल रही है।
- जनजातीय समाज के विकास में सरकार के विकासमूलक योजनाओं में विरोधाभास है।

जनजाति, पारिस्थितिकी एवं विकास : पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

जब किसी भी विषय पर शोध कार्य किया जाता है तो उसके लिये यह आवश्यक है कि जो भी शोध कार्य किया जा रहा है वह नियोजित एवं प्रायेजित ढंग से पूर्ण किया जाये। जिससे अध्ययन किये जा रहे विषय के बारे में उपयुक्त एवं महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। प्रस्तुत अध्ययन जनजाति, पारिस्थितिकी एवं विकास से सम्बन्धित है। विषय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए शोध पद्धति के महवपूर्ण घटको को क्रमबद्ध तरीके से वर्णित किया गया है जिसमें समग्र, शोध पद्धति, प्रतिदर्श, अध्ययन क्षेत्र का चयन, उत्तरदाताओं का चयन, आंकड़ा संग्रह के लिए उपकरण एवं तकनीकी, शोध में आने वाली कठनाईयों एवं अग्रिम अध्ययन के विषय आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है जिससे प्रस्तुत अध्ययन को नियेजित ढ़ंग से पूर्ण किया जा सके।

प्रस्तुत अध्याय "जनजाति, पारिस्थितिकी एवं विकास : एक पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य" के अन्तर्गत अध्ययन पद्धति, शोध अभिकल्प, शोध रणनीति ऑकड़ों का स्रोत, प्रतिर्दश प्रतिरूप, प्रतिर्दश विधि, प्रतिर्दश आकार, प्रारम्भिक सर्वेक्षण, साक्षात्कार अनुसूची, ऑकड़ा संग्रह के लिए उपकरण एवं तकनीकी, आंकड़ों का विश्लेषण, क्षेत्र अध्ययन अनुभव इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

शोध अभिकल्प

अध्ययन की प्रकृति व उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए **व्याख्यात्मक (Explanatory)** शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है जिससे अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में सही–सही जानकारी प्राप्त हो सके। इस अध्ययन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों पद्धति का भी प्रयोग किया गया।

शोध की रणनीति

प्रस्तुत अध्ययन में मिश्रित विधि पद्धति अर्थात गुणात्मक और मात्रात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है। मिश्रित विधि पद्धति सामाजिक अध्ययन का एक विधि है जिसकी अपनी दार्शनिक धारणाएँ है जो अनुसंधान प्रक्रिया में तथ्यों के संग्रह और विश्लेषण की दिशा में गुणात्मक एवं मात्रात्मक विधियों के मिश्रण को निर्देशित करती है और यह कई चरणों में पूर्ण होती है। इसका केन्द्रीय आधार यह है कि संयोजन में मात्रात्मक और गुणात्मक दृष्टिकोणों का उपयोग (मात्रात्मक या गुणात्मक दृष्टिकोणों में से किसी एक का उपयोग करने की तुलना में) अनुसंधान समस्याओं को बेहतर समझ प्रदान करता है **(क्रेशवेल एवं क्लार्क, 2007)**।

जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को समझना बहुत जटिल है क्योंकि जनजाति समाज की उपरोक्त व्यवस्थाएं हमेशा से मुख्यधारा के समाज से अलग रही है। ये अपनी भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज, कर्म–काण्ड, धार्मिक क्रिया कर्म आदि पर अपनी प्रतिक्रिया अलग–अलग तरीके से अभिव्यक्त करते है जिसका विश्लेषण करना कठिन होता है। दूसरा कारण यह है कि मात्रात्मक आँकड़ें विशेष रूप से जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक एवं उनकी पर्यावरणीय चेतना के विचारों को सन्तुलित तरीके से प्रस्तुत नही कर पाती हैं। अतः प्रस्तुत अध्ययन में क्रमबद्ध व्याख्यात्मक विधि (Sequencial explanatory method) का प्रयोग किया गया है।

प्रतिदर्श

समग्र

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श के आधार पर सोनभद्र जिले का चयन किया गया हैं। सोनभद्र, उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित एक जिला है। सोनभद्र अपनी भौगोलिक अवस्थिति में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड एवं बिहार राज्यों की सीमाओं से लगा हुआ है। सोनभद्र जिला एक औद्योगिक क्षेत्र है जिसके पास बाक्साइट, लाइमस्टोन, कोल, गोल्ड इत्यादि बहुमूल्य समझे जाने वाले

खनिज पदार्थो का भण्डार है। सोनभद्र को **''भारत का ऊर्जा राजधानी''** भी कहा जाता हैं। सोनभद्र का क्षेत्रफल 6,788 वर्ग किमी0 है, इसका विस्तार 24.45 उत्तरी अक्षांश एवं 82.99 पूर्वी देशान्तर तक है। जनगणना 2011 के अनुसार सोनभद्र जिले की ग्रामीण क्षेत्रों में कुल जनसंख्या 15,48,217 है जिसमें से जनजातीय क्षेत्रों में लगभग 3,74,668 जनसंख्या निवास करती है।

अध्ययन क्षेत्र का चयन

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिये उत्तर प्रदेश के सोनभ्रद जिले का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के माध्यम से किया गया है। सोनभद्र जिले में 8 विकासखण्ड है जिसमें से 3 विकासखंडो में जनजातियों की जनसंख्या अधिक है। अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु नगवा, दुद्धी एवं बभनी विकासखंडो का चयन किया गया है। नगवा विकास खंड में ग्राम पंचायतो की संख्या 52, दुद्धी विकासखण्ड में 60 ग्राम पंचायत तथा बभनी विकासखण्ड में 40 ग्राम पंचायते है। जिसमें से उद्देश्यात्मक प्रतिचयन के माध्यम से नगवा विकासखण्ड से बरहमोरी ग्राम पंचायत, दुद्धी विकासखण्ड से बघाडू ग्राम पंचायत एवं बभनी विकासखण्ड से चौना ग्राम पंचायत का चयन किया गया है। उपरोक्त ग्राम पंचायतो में अन्य ग्राम पंचायतो की अपेक्षा जनजातियों की संख्या अधिक है जहाँ से हमे जनजातियों की संस्कृति, उनमें पर्यावरणीय चेतना एवं विकास से सम्बन्धित कारको का सही–सही एवं महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकता है। बरहमोरी ग्राम पंचायत में खरवार जनजाति, बघाडू ग्राम पंचायत में बैगा जनजाति तथा चौना ग्राम पंचायत में गोंड जनजातियां बाहुल्य संख्या में निवास करती है।

उत्तरदाता का चयन

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु सोनभद्र जिले में चयनित बरहमोरी, बघाडु एवं चौना ग्राम पंचायतो में असंभावनामूलक प्रतिचयन (Non-Probability Sampling) के अन्तर्गत उद्देश्यात्मक प्रतिचयन (Purposive Sampling) के माध्यम से प्रत्येक ग्राम पंचायत से 100–100 जनजातियों का चयन किया गया, जिनकी कुल संख्या 300 है।

आकड़ा संग्रह के लिए उपकरण एवं तकनीकी

इस अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ो का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक आंकड़ो के संग्रह के लिए प्रमुखतः चयनित गावों के उत्तरदाताओं से गणनात्मक व गुणात्मक आंकड़ो के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। जिसके अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के आधार पर उनकी सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति को ज्ञात किया गया है तथा यह प्रश्न क्लोस एंडेड प्रकार के हैं तथा साक्षात्कार अनुसूची में इसके अतिरिक्त विष्यनिष्ठ प्रश्नों के आधार पर गुणात्मक आकड़ों का संग्रह किया गया हैं। आगे, गुणात्मक पद्धति को ध्यान में रखते हुए उत्तरदाताओं के साक्षात्कार के लिए साक्षात्कार गाइड तथा समूह केन्द्रित चर्चा का प्रयोग किया गया है। साक्षात्कार तथा समूह केन्द्रित चर्चा उन उत्तरदाताओं से किया गया जो आसानी से अध्ययन क्षेत्र में मिले व जो ऐच्छिक रूप से तैयार हुए। समूह केन्द्रित चर्चा के लिए 8 व उससे अधिक उत्तरदाताओं को शामिल किया गया। अवलोकन के लिए असहभागी अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य में द्वितीयक आकड़ो के संग्रह के लिए विभिन्न सरकारी, गैर–सरकारी आकड़ों, पुस्तकों, जर्नल, पत्रिकाओं, समाचारपत्रों, पुस्तकालयों, The Ministry of Tribal Affair तथा The Archaeological Survey of India sites इत्यादि का सहायता लिया गया है।

आंकड़ो का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में मात्रात्मक आकड़ों के विश्लेषण के लिए SPSS (Statistical Package for Social Sciences) सॉफटवेयर का प्रयोग किया गया हैं जिसके आधार पर अध्ययन के उद्देश्यों से संबंधित तालिकाओं तथा रेखाचित्रों का निर्माण किया गया है तथा साथ ही गुणात्मक आंकड़ों का विश्लेषण भी मात्रात्मक विश्लेषण के साथ किया गया है।

जनजाति, पारिस्थितिकी एवं विकास : सैद्धांतिक विश्लेषण

व्यक्ति अपने समाज एवं पर्यावरण या पारिस्थितिकी का प्रतिबिम्ब होता है। जैसा भू–भाग होगा वैसा ही उस समाज का रहन–सहन, संस्कृति एवं भाषा शैली

होगी। जनजातीय समाज सुदूर जंगलों, पहाड़ो, नदियों के किनारे या एकांकी स्थलों पर निवास करते रहे है। जंगल और जनजाति दोनों मिलकर एक पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते है जो एक दूसरे के पूरक होते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि एक को यदि दूसरे से अलग करते है तो दोनों की सामाजिक एवं पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होती है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् विकास की अवधारणा अस्तित्व में आई। सरकार ने मुख्यधारा से दूर रहने वाले जनजातीय क्षेत्रों में विकास का कार्य प्रारम्भ किया तथा उन्हें मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयास आरम्भ किया।

प्रस्तुत अध्याय, "जनजाति, पारिस्थितिकी एवं विकास : सैद्धांतिक विश्लेषण" के अन्तगर्त जनजाति, पारिस्थितिकी एवं विकास के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। जिसके अन्तर्गत अध्याय परिचय, जनजातीय समाज का परिचय, जनजाति शब्द की उपयुक्तता, अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं, भारत के जनजाति, जनजातियों के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा जनगणना में दिए गए विभिन्न शीर्षक, भारत के जनजातियों के वर्गीकरण इत्यादि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसके बाद पारिस्थितिकी को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है तथा साथ ही पारिस्थितिकी के विभिन्न दृष्टिकोणों का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत किया गया है एवं साथ ही विकास की अवधारणा एवं इसके प्रमुख सिद्धांतों को भी प्रस्तुत किया गया है तथा अन्त में जनजाति विकास एवं इससे जुड़े विभिन्न सिद्धांतों जैसे पृथक्करण का सिद्धांत, सात्मीकरण का सिद्धांत, एकीकरण का सिद्धांत व समकालीन सिद्धांत का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

जनजाति शब्द को परिभाषित और संकल्पित करना बहुत ही कठिन है। समाजशास्त्री और सामाजिक मानववैज्ञानिक ने जनजातियों की एक भी स्वीकृत परिभाषा प्रदान करने में असफल रहे है। यद्यपि जनजातियाँ विभिन्न भौगोलिक, पारिस्थितिकी, राजनीतिक और सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भ में एक दूसरे से भिन्न होती है। भिन्न होने के बावजूद उनमें उच्च स्तर की समानता देखी जाती है, जिसके आधार पर उन्हें परिभाषित किया जाता है। बहुत से विद्वानों के अनुसार, एक जनजाति उन लोगों का समूह होता है जो अलग–थलग पड़े जंगलों या पहाड़ों

पर रहते हैं। ये शिकार और भोजन एकत्र करके साधारण जीवन व्यतीत करते है। जनजातियों की अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति, विश्वास, जादू, टोना एवं टोटम के साथ–साथ उनकी अनोखी रीति–रिवाज और परंपरा उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा है। जनजातीय अध्ययन या अध्ययनों को निरूपित करने के लिए जनजातियों के सिद्धांत भी अलग–अलग राजनीतिक और सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भ में भिन्न है। प्रत्येक सिद्धांत अपनी श्रेष्ठता का औचित्य सिद्ध करने की कोशिश करते है इसलिए जनजातीय अध्ययन के परिवर्तन पर चर्चा, बहस और विचार–विमर्श नियमित रूप से उचित या पर्याप्त ज्ञान और समझ देने में निर्णायक नहीं रहता है।

प्रस्तुत अध्याय में जनजातियों की परिभाषा दो तरह कि दी गयी है। एक बौद्धिक तथा दूसरा संवैधानिक। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि जिस तरह से जनजाति की परिभाषा निश्चित नही है, ठीक उसी प्रकार से विकास की अवधारणा भी निश्चित नही है। आर्थिक विकास के बावजूद भी कुछ जनजातियाँ अपनी संस्कृति एवं पारिस्थितिकी को खोने के कगार पर है, जिसका कारण आधुनिकीकरण एवं विषम विकास है। विषम विकास के कारण जनजातियों की संस्कृति और पारिस्थितिकी तंत्र हासिए पर आ गया है। सरकार के जनजातीय विकास नीतियों के बावजूद भी जनजातीय समाज एकांकीपन से जूझ रहा है क्योंकि उसने अपना पारिस्थितिकी तंत्र सरकार की गलत नीतियों के कारण खो दिया है। दूसरे शब्दों में कहे तो सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में विकास के लिए बड़े–बड़े बाधों का निर्माण, वनों की अत्याधिक मात्रा में कटाई, जल–विद्युत एवं सिंचाई योजनाएं आदि के कारण जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हुआ है।

अध्ययन क्षेत्र की रूप रेखा

भारत विविधताओं का देश है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदाय, जाति आदि समुदाय के लोग रहते है। इनमें से आदिवासी भी एक है। अफ्रीका के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी आदिवासी आबादी भारत में निवास करती है। शायद इसलिए भी भारत को विशाल आदिवासियों वाला देश कहा जाता हैं। 2011 की जनगणना

के अनुसार, देश की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की हैं जो भारत के लगभग 15 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रों में फैले हुए है या निवास करते है। ये बृहत्तर भारतीय समाज से पृथक हमेशा प्राकृतिक क्षेत्रों में निवास करते आए है। उनकी अपनी संस्कृति, भाषा, धर्म, रीति–रिवाज एवं व्यवस्था रही है। सदियों से उनका भूमि, वन और अन्य संसाधनों पर नियंत्रण रहा है और वे स्वयं के कानूनों, परम्पराओं और रीति–रिवाजो से शासित होते रहे है। वे अपना विकास स्वयं करते रहे है।

प्रस्तुत अध्याय "अध्ययन क्षेत्र की रूपरेखा" के अन्तर्गत अध्याय परिचय, भारत का संक्षिप्त परिचय, अनुसूचित जनजाति, भारतीय जनजातियों का वितरण, उत्तर प्रदेश की जनजातियॉ, स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश की जनजातियां, 1967 में घोषित उत्तर प्रदेश की प्रमुख जनजातीय समूह, सोनभद्र का संक्षिप्त इतिहास एवं परिचय, सोनभद्र जनपद की जनजातियाँ तथा अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि के साथ–साथ परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि को जानने का प्रयास किया गया है।

किसी भी शोध विषय में उत्तरदाताओं की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि के साथ–साथ परिवार के सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक होता है, क्योंकि पृष्ठभूमि के माध्यम से ही उत्तरदाताओं एवं उनके परिवार के विचारों, मनोवृत्तियों, मूल्यों, विश्वासों व आर्थिक स्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है। जिससे शोध विषय से सम्बन्धित विषयों के महत्वपूर्ण जानकारी हासिल करने में सहायता मिलती है। इसलिए प्रस्तुत शोध अध्याय के अन्तर्गत चयनित जनजातीय परिवारों में से परिवार के सबसे बुजुर्ग सदस्य से सम्पर्क किया गया है। जिससे हमें जनजातीय समाज से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी मिल सके।

उत्तरदाताओं से मिली जानकारी से यह स्पष्ट है कि पुरूष उत्तरदातओं की संख्या महिला उत्तरदाताओं की अपेक्षा अधिक है क्योंकि पुरूष उत्तरदाताओं ने महिला उत्तरदाताओं की अपेक्षा ज्यादा प्रतिक्रिया किया। उत्तरदाताओं में विवाहितों की संख्या ज्यादा है और इन लोगों को जब किसी कागज में धर्म का ब्यौरा देना

होता है तो हिन्दू धर्म का देते है लेकिन ये पूजा–पाठ या अनुसरण अपने जनजातीय इष्ट देवी–देवता या पूर्वजों की करते है। हिन्दू देवी–देवता को नहीं मानते है या उनकी पूजा नहीं करते है। सर्वाधिक उत्तरदाता अशिक्षित है, बहुत ही कम ऐसे लोग है जो प्राथमिक तक ही शिक्षा ग्रहण किए है। सर्वाधिक परिवार ऐसे है जहां सदस्यों की संख्या 7 या उससे अधिक है। इसका तात्पर्य यह है कि जहां भारत में एकांकी परिवारों की संख्या बढ़ रही है वहीं दूसरी तरफ गांव में रहने वाले जनजातीय परिवारों में अभी भी संयुक्त परिवार विद्यमान है। अधिकतम परिवारों में सदस्य उच्चतम शिक्षा माध्यमिक तक ही ग्रहण कर पाते क्योंकि नजदीक में कोई विद्यालय नहीं होने कारण तथा यदि कोई निजी विद्यालय है भी तो वहां का शुल्क इतना महंगा है कि ये लोग वहन कर पाने में सक्षम नहीं है इसलिए ज्यादातर लोग माध्यमिक से आगे की पढ़ाई नहीं कर पाते हैं।

अधिकतर उत्तरदाताओं के परिवार का कुल आय 11000 से 15000 हजार के बीच है। ऐसा इसलिए है क्योंकि गांव में कोई काम नहीं मिलता है। परिवार के एक या दो सदस्य गांव से बाहर शहर या अन्य किसी जगह पर काम करते है तो उससे कुछ आय हो जाती है। इनके यहां सारा कार्य भार या निर्णय परिवार के किसी पुरूष द्वारा ही लिया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि जनजातीय समाज में परिवार का स्वरूप पितृसत्तात्मक है। जिस घर में ये लोग रहते है उस घर का कागज लगभग सभी उत्तरदाताओं के पास है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं के यहां जीविकोपार्जन के लिए कृषि एवं मजदूरी किया जाता है। लेकिन इनकों काम साल में हर समय नहीं मिलता है और इसका भी कोई निश्चित नहीं है कि यदि काम मिलेगा तो किस महीने में मिलेगा। लगभग सभी उत्तरदाताओं के यहां कृषि योग्य भूमि है लेकिन हर समय ये लोग खेती नहीं कर पाते है क्योंकि उनके यहां सिचाई के लिए पानी की समस्या है और बहुत लोगों की भूमि समतल भी नहीं है। खेती करने के लिए सर्वाधिक लोग फावड़ा और हल–बैल का ही इस्तेमाल करते है क्योंकि ट्रैक्टर से खेतों की जुताई करवाने में वे सक्षम नहीं है। खेती ये स्वयं के लिए ही करते है। बेचने के लिए इसलिए नहीं कर पाते है क्योंकि उसके लिए इनके पास उतनी व्यवस्थाए नहीं मिल पाती है या नहीं है जिससें ये

लोग खेती कर पाए और उससे आय कर पाए। जो थोड़े बहुत लोग बेचने के लिए करते है। उसमें से कुछ लोग गांव में ही बेचते है और कुछ लोग बजार में बेचने जाते है। इससे उनकी महीनें में लगभग 500 रूपए से 1000 रूपए तक की कमाई हो जाती है।

ज्यादातर लोग आवा–गमन के लिए पैदल जाते है या साईकिल का इस्तेमाल करते है। बहुत कम लोग है जो टेम्पू, जीप या बस का इस्तेमाल करते है। सफर में इनके साथ किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं होता है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं के बच्चे सरकारी विद्यालय में ही माध्यमिक तक ही पढ़ पाते है क्योंकि माध्यमिक से आगे की पढ़ाई के लिए नजदीक में कोई सरकारी स्कूल नहीं है और यदि नजदीक में कोई प्राइवेट स्कूल है भी तो उसका शुल्क महंगा होने के कारण लोग अपने बच्चे को पढ़ा नहीं पाते है। परिवार में किसी सदस्य के अस्वस्थ होने के स्थिति में अधिकतर उत्तरदाता झाड़–फूक या प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लेते है। जब इससे ठीक नहीं हो पाते है तब वे गांव में झोला छाप डाक्टर के नाम से पहचाने जाने वाले से इलाज कराते है या दवा लेते है। सरकारी अस्पताल नजदीक में नहीं है और प्राइवेट अस्पताल में पैसा ज्यादा लगता है इसलिए वहां नहीं जाते है।

उपरोक्त अवलोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र क्षेत्र के जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ है और आज भी वे गरीबी में अपना जीवन यापन करने के लिए मजबूर है।

जनजातीय सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन

सदियों से जनजाति समाज मुख्य समाज से पृथक प्रकृति के समीप रहते रहे है जिससें उन्होनें अपने स्थानीय पारिस्थितिकी के अनुरूप ही अपनी एक अलग संस्कृति को विकसित किया है। उनके संस्कृतियों के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पेड़, पौधें, जानवर, पक्षी, इत्यादि प्राकृतिक चीजे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ऐसी प्राकृतिक वस्तुओं के साथ उनका अर्न्तसम्बन्ध उनकी महान संस्कृति का एक हिस्सा बन गया है। विभिन्न जनजातीय

समूहों की अपनी अलग–अलग विश्वास प्रणालियॉ होती है जो उनके स्थानीय भौगोलिक वातावरण के अनुसार भिन्न होती है। उनके विश्वास रीति–रिवाज आदि उनके जीवन से घनिष्ट रूप से जुड़े होते है जिससें इन लोगों को अलग करना मुश्किल होता है। ये जनजाति लोग विभिन्न अलौकिक शक्तियों में विश्वास रखते है जो उनके दैनिक जीवन और आजीविका पर गहरा प्रभाव डालते है। जनजातियों के दुनिया में यदि कोई भी घटना घटित होती है जो मानव नियंत्रण से परे होती है तो यह माना जाता है कि अमुक घटना आमतौर पर अलौकिक शक्तियों के प्रभाव या तंत्र के कारण हुआ है जिसके परिणामस्वरूप वे विभिन्न दोषपूर्ण और परोपकारी आत्माओं में विश्वास करते है। उन सभी आत्माओं द्वारा पैदा की गई अनिश्चितता की सभी चिंताओं और भावनाओं को दूर करने और मन में शक्ति प्राप्त करने के लिए वे उन सभी आत्माओं को खुश करने के लिए समय–समय पर कई अनुष्ठान करते है।

प्रस्तुत अध्याय "जनजातीय सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन" में सोनभद्र की गोंड़, खरवार और बैगा जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन किस प्रकार उनके स्थानीय पारिस्थितिकी के साथ जुड़ा हुआ है तथा उनके यहां होने वाले विभिन्न अवसरों जैसे जन्म, विवाह, मृत्यु, बुआई, कटाई आदि पर होने वाले अनुष्ठानों और कार्यक्रमों के बारे मे जानने का प्रयास किया गया है। इनके अनुष्ठानों में पूजा किए जाने वाले उनके देवी–देवताओं व पूर्वजों की क्या भूमिका और वे किस प्रकार इनकी रक्षा करते है तथा इनके द्वारा किए जाना वाला अनुष्ठान या धार्मिक कर्मकाण्ड परिस्थितिकी को कैसे लाभ पहुँचाता है और इससे सम्बन्धित चेतना को जानने का प्रयास किया गया है।

जनजातीय भारत धार्मिक विश्वासों तथा व्यवहारों का रंगीन परिदृश्य प्रस्तुत करता है, जो उनकी सांस्कृतिक–पारिस्थितिक दशाओं के साथ उनके समायोजन को अभिव्यक्ति करता है। उनके सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में धर्म की एक महत्वपूर्ण होती है, जो उनके विभिन्न आयोजनों एवं अनुष्ठानों में देखने को मिलती है। उनका पुरा जीवन स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र पर आधारित होता है। जनजातीय समाज के सभी प्रकार का क्रिया–कलाप जैसे धार्मिक विश्वास प्रणाली,

संस्कार, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, ज्ञान, विज्ञान, लौकिक एवं अलौकिक एवं संस्कृति स्थानीय पर्यावरण से ओत–प्रोत होता हैं। इसके ही अनुसार उनका सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन परिभाषित एवं परिचालित होता है। जनजातीय समुदायों में ऐसा प्रचलित है कि उनके देवी–देवताओं या पूवर्जों की आत्माए प्राकृतिक पदार्थों जैसे पशु, पक्षियों आदि में विद्मान करती है, इसलिए उनके टोटम में प्राकृतिक पदार्थों का बहुत महत्व होता है। उनका अपने टोटम के प्रति श्रद्धा का भाव होता है तथा वे हमेशा उसकी पूजा एवं सुरक्षा करते है। इस प्रकार देखा जाय तो आदिवासियों के संस्कृतियों का निमार्ण पारिस्थितिकी तंत्र का ही हिस्सा है, जो चेतन या अचेतन रूप में प्राकृतिक पर्यावरण के संरंक्षण में मदद करता हैं। संक्षेप में कहे तो आदिवासियों की संस्कृति एवं पर्यावरण चेतना, क्षेत्रीय पारिस्थितिकी का प्रतिबिम्ब होता है।

प्रस्तुत अध्याय में भी हमे यह देखने को मिलता है कि सोनभद्र क्षेत्र की गोंड़, खरवार, और बैगा जनजातियों के जीवन के विभिन्न पक्षों में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है। वे आज भी अपने सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन में होनें वाले विभिन्न अवसरों एवं कार्यक्रमों में धर्म की भूमिका को प्रदर्शित करते है। जिससे ऐसा प्रदर्शित होता है कि उनका जीवन, प्रकृति के साथ कही न कही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आज भी जुड़ा हुआ है। वे वर्तमान में भी अपने यहां जन्म, विवाह, मृत्यु के समय में होने वाले अनुष्ठानों व कार्यक्रमों में अपने देवी–देवता व पूर्वजों को याद करते है। बारिश होने से पहले, खेतों में हल चलाने या खेती के शुरूआत करने से पहले वे अपने इष्ट देवता और प्रकृति की पूजा करते है। फसल कटने के उपरांत वे सबसे पहले अपने इष्ट देवता, पूर्वजों या प्रकृति की पूजा करते है या उन्हें भेट स्वरूप अनाज को चढानें है, इसके बाद ही अनाज को घर ले जाते है। इनके यहां होने वाला **कर्मा त्यौहार** जिसमें वे अपने इष्ट देवता, पूर्वज व प्रकृति की पूजा करते है, पेड़ पौधों का रोपण करते है और अपने क्षेत्र को हरा–भरा रखने के लिए हमेशा प्रयास करते है। यह सब दर्शाता है कि ये प्रकृति प्रेमी होते है और ये नहीं चाहते कि इनके क्षेत्र में या इनके परिस्थितिकी तंत्र में किसी प्रकार की विकृति उत्पन्न हो। इसके लिए वे सदैव प्रयासरत रहते है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि

सदियों से चले वे अपने पूर्वजों के पारंपरिक ज्ञान, रीति–रिवाजों और कर्म–काण्डों को जिंदा रखा है जिससे उनका सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व धार्मिक जीवन परिभाषित और परिचालित होता है।

दूसरी तरफ आज भी उनके अन्दर चेतना है कि मानव और प्रकृति के बीच अर्न्तसम्बन्ध जरूरी है क्योंकि उनका मानना है कि इस पृथ्वी पर विद्यमान सभी चीजें जैसे पशु, पक्षी, पेड़, जानवर, मानव आदि प्रकृति की ही ऊपज है और इस पृथ्वी से सब कुछ खत्म हो जाय और सिर्फ मानव बचा रहे ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि सभी चीजे एक दूसरे से घनिष्ट रूप से जुड़ी हुई है और यदि इनमें से किसी एक का भी विनास होता है तो निश्चित है उसका दुष्प्रभाव दूसरी चीजों पर भी अवश्य पड़ेगा। जैसे पानी के अत्याधिक दोहन से मानव के सामने विकट संकट उत्पन्न हो गया है। जल स्तर इतना नीचे चला गया है कि लोगों को पीने के लिए पानी नहीं मिल रहा है। सुखा पड़ता है, समय से बारिश नहीं होती है तो खेती पूरी तरह से बर्बाद हो जाता है। इसलिए उनका मानना है कि जीवन के पानी बहुत आवश्यक है। इसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। लेकिन वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में लोग पानी की समस्या से जूझ रहे है क्योंकि उनके यहां जल स्तर बहुत नीचे चला गया है और उनकी ये समस्या गर्मी के समय में और भी ज्यादा बढ़ जाती है।

यदि हम पारिस्थितिकी तंत्र का विनाश करते है तो हमारा भी विनाश निश्चित हैं क्योंकि मानव अन्य स्थलीय घटको की तरह इस पारिस्थितिकी तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा हैं। इसलिए यदि प्राकृतिक पर्यावरण में मानव द्वारा किसी विषम प्रकार का परिवर्तन करने का प्रयास किया जायेगा तो उसका निश्चित ही नाकारात्मक प्रभाव मानव के सामने प्राकृतिक आपदा के रूप में आयेगा। यद्यपि आदिवासी समाज के विकास का जो पैमाना हैं वह संतुलित विकास को दर्शाता है। क्योंकि आदिवासी समाज प्राकृतिक संसाधनों का उतना ही दोहन करते है जितने से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आदिवासी समुदाय की पारिस्थितिकी तंत्र के साथ ग्राही एवं दाता का संबंध होता है, जो पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखते है। आदिवासियों के विकास का

प्रारूप संतुलित एवं सतत होता हैं। यदि एक शब्द में कहे तो जनजातियों को प्राकृतिक वैज्ञानिक कहा जा सकता हैं जो अपने सामाजिक, आर्थिंक एवं सांस्कृतिक संतुलन के साथ–साथ प्राकृतिक संतुलन को भी बनाए रखते है। लेकिन सरकार की विकास नीतियों, कार्यक्रमों के कारण जनजातियों के पारिस्थितिकी में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी हैं। जिसके परिणाम स्वरूप विस्थापन, बेरोजगारी, भूखमरी, गरीबी जैसी विभिन्न प्रकार की समस्याओ का आर्विभाव हुआ हैं।

जनजाति समाज एवं विकास नीति

प्रस्तुत अध्याय "जनजाति समाज एवं विकास नीति" में जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए किये गये संवैधानिक प्रावधानों तथा उनके विकास के लिए चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं एवं नीतियों का अध्ययन क्षेत्र के आदिवासियों पर पड़ने वाले सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों का तथा उनमें उपयुक्त योजनाओं की जानकारी की स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं।

भारत में जनजातियों के विकास के लिए किसी भी नीति निर्माण की दुविधा यह रही है कि किस तरह से यह संतुलन बनाया जाए जिससे कि आदिवासियों की पहचान, भाषा, रीति–रिवाज, संस्कृति एवं मूल्यों का संरक्षण किया जा सके तथा मुख्यधारा के जीवन शैली के सैलाब से जनजातियों की रक्षा की जा सके। इसके साथ ही उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल और आय सृजन तक उनकी पहुँच को सुनिश्चित किया जा सके, जिससे कि उनके जीवन को और बेहतर बनाया जा सके। लेकिन यदि हम आदिवासी विकास के कालानुक्रमिक इतिहास को देखें तो 19वीं शताब्दीं के अन्त तक तो आदिवासी विकास के लिए किसी भी प्रकार का कोई प्रयास नही किया गया। उस समय तक समाजवैज्ञानिको को मानना था कि चुंकि समाज का निरंतर विकास हो रहा है तथा वह एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ रहा है इसलिए आदिवासी विकास हेतु विशेष मानवीय प्रयत्नों की आवश्यकता नही है। इस प्रकार उद्विकासवादी सिद्धान्त के प्रवर्तकों ने जनजातियों को अकेले छोड़ देने की नीति का समर्थन किया। आगे चलकर जनजातीय समस्याओं के निराकरण एवं

जनजातीय कल्याण के लिए पृथक्करण की नीति को कुछ मानवशास्त्रियों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समर्थन किया। इन लोगों का भी यही मानना था कि आदिवासी अपना विकास स्वयं कर लेगे। आदिवासी विकास से संबंधित इस प्रकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन पहली बार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देखने को मिलाता है। धर्मनिरपेक्ष एवं समतावादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से संविधान का निर्माण किया गया तथा पृथक्करण की नीति को त्यागकर आत्मसातीकरण की नीति को अपनाया गया। आगे चलकर पं0 जवाहरलाल नेहरू ने एकीकरण का समर्थन करते हुए पंचशील का सिद्धान्त दिया, जिसका उद्देश्य यह था कि एक ऐसा सार्मथ्यवान ढाँचा आदिवासी लोगों को प्रदान किया जाए जिससे वे अपनी स्वशासन की प्रणाली में अपनी प्रतिभा के अनुरूप अपनी परम्परा, सांस्कृतिक जीवन एवं लोकाचार के सर्वश्रेष्ठ तत्वों को बनाये रखते हुए विकास के लाभ को प्राप्त कर सकें। इसका क्रियान्वयन थोड़ा कठिन था क्योंकि भारत के लगभग 15 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रों में फैले प्रत्येक आदिवासी समुदाय आमतौर पर एक–दूसरे से भाषाओं, बोलियों, रीति–रिवाजों, सांस्कृतिक प्रथाओं एवं जीवनशैलियों में काफी अलग–अलग है। इसलिए स्वतंत्रता के बाद आदिवासी समुदाय के विकास के लिए जो भी प्रावधान किया गया उसमें इस बात का ध्यान रखा गया कि आदिवासियों के विकास के साथ–साथ उनकी अपनी संस्कृति, भाषा, रीति–रिवाज आदि को नुकसान न पहुँचे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने आदिवासी विकास की ओर प्राथमिकता के आधार पर कार्य करने की नीति को अपनाया। संविधान निर्मात्री सभा ने अपने उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर व पिछड़े वर्गों को विकास के विशेष अवसर प्रदान किये जाये ताकि ये वर्ग देश की मुख्य धारा में अपने आप को समाहित कर सके। संविधान में आदिवासी समुदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए बहुत से प्रावधान किये गये तथा साथ ही अनेक प्रकार की नीतियां एवं कार्यक्रमों के माध्यम से इनका विकास करने का प्रयास किया गया।

किसी अधिकार या कानून या नीति को कागज़ पर मात्र लिख देने का यह मतलब नहीं होता कि वह अधिकार या कानून या नीति वास्तव में लागू हो चुका है। इन प्रावधानों को अमली जामा पहनाने के लिए लोगों को निरंतर कोशिशें करनी

पड़ती हैं। संविधान में आदिवासी समुदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिए विभिन्न प्रावधान किये गये। जनजातियों के लिए संविधान में किये गये इन विभिन्न प्रावधानों का उद्देश्य जनजातियों को देश के अन्य विकसित समाज के समकक्ष लाना, उन्हें देश की मुख्य जीवनधारा के साथ जोड़ना तथा एकीकरण करना था, ताकि वे देश की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में भागीरदार बन सके। इस संक्षिप्त विवरण से तो हमारे मस्तिष्क में एक खुशनुमा तस्वीर उभरती है, लेकिन अफसोस की बात यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग 70 सालों के पश्चात् आदिवासी समुदाय की दुखद् और दयनीय दशा बनी हुई है। यह कटु सत्य है कि संविधान निर्माताओं के आर्दश विचारों को यथार्थ रूप अबतक नही दिया जा सका है। आज भी आदिवासी क्षेत्रों में भू–अलगाव, शोषण, कर्ज, आदिवासियों के वन अधिकार, वन ग्रामों का विकास, पंचायत का अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार, अप्राकृतिक विस्थापन एवं अपर्याप्त पुनर्स्थापना, जनजातियों का संरक्षण एवं विकास, आदिवासी उपयोजना का प्रभावी एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियान्वयन ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर प्रभावी कार्य किये जाने की आवश्यकता है।

दूसरी तरफ किसी भी योजना का लाभ उपयुक्त व्यक्ति को तभी प्राप्त हो सकता है जब उस योजना के बारे में उस व्यक्ति को जानकारी हो अन्यथा किसी भी योजना को मात्र लागू कर देने से सफलता नहीं मिल सकती हैं। क्योंकि ग्रामीण परिवेश में रहने वाले लोग इतना जागरूक नहीं होते है और ना ही वे किसी प्रकार के इलेक्ट्रानिक उपकरणों का इस्तेमाल करते है जिससे वे किसी भी योजना के बारे में जान सके। इसके लिए वे ऐसे व्यक्ति पर निर्भर रहते है जो इनको योजना के बारे में सही–सही जानकारी मुहैया करा सके। इसलिए योजना के कार्यान्वयन से जुड़े सम्बन्धित कर्मचारियों को क्षेत्र में जाकर लोगों को बताना पड़ता है, उन्हें जागरूक करना पड़ता है जिससे वे योजना के बारे मे जान सके और उसका लाभ ले सके।

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रथम उपकल्पना : जनजातीय समाज आज भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं।

उत्तरदाताओं के सामाजिक एवं आर्थिक विवरण से स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद के चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक लोग अशिक्षित है और सर्वाधिक परिवार में उत्तरदाताओं के बच्चे माध्यमिक तक ही शिक्षा ग्रहण कर पाते है, अपनी गरीबी और नजदीक में सरकारी विद्यालय नहीं होने के कारण। चयनित उत्तरदाताओं में से आधे से भी कम परिवारों की कुल मासिक आय मात्र 11000 हजार रूपये से लेकर 15000 हजार रूपये तक ही है, जहां एक परिवार में दो या तीन पीढ़िया एक साथ रहती हो वहां पर इतने रूपये में ही इतने लोगों का जीविकोर्पाजन करना मुश्किल होता है। सर्वाधिक उत्तरदाता आज भी जीविकोर्पाजन के लिए कृषि एवं मजूदरी पर निर्भर है, लेकिन सिचाई के लिए पानी की समस्या और मजदूरी के लिए हर समय काम की उपलब्धता का न होना इनके सामने विषम स्थिति पैदा कर देते है जिससे इनको परिवार का जीविकोर्पाजन करना बहुत मुश्किल हो जाता है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं को मजदूरी से 200 रूपये ही प्रतिदिन के हिसाब से आय होती है अर्थात महिने का 6000 हजार रूपये आय होती है जो कि वर्तमान की महगाई के हिसाब से देखा जाय तो बहुत कम है। चयनित उत्तरदाताओं में आधा लोग सिर्फ जुन–जुलाई में खेती करते है क्योंकि उनके यहां पानी की समस्या है इसलिए ये लोग खेती करने के लिए बरसात के पानी पर ही निर्भर रहते है। सर्वाधिक उत्तरदाता खेती करने के लिए फावड़ा और हल–बैल का इस्तेमाल करते है क्योंकि ट्रैक्टर का खर्च वहन करने में सक्षम नहीं है। सर्वाधिक उत्तरदाता ऐसे है जिनकी खेती से कोई आय नही होती है। आवा–गमन के लिए ज्यादातर उत्तरदाता पैदल जाते है या साईकिल का इस्तेमाल करते है। उनके यहां नजदीक से कोई वाहन नहीं चलता है तो इसलिए वे लोग पैदल या साईकिल से दूरी तय करते है या गांव से कुछ दूरी पर जाने पर इनको वाहन मिलता है तब वहां से वे लोग उससे जाते है लेकिन ऐसे उत्तरदाता बहुत कम है। वर्तमान समय में जनजातीय उत्तरदाता अपना या परिवार के किसी सदस्य के अस्वस्थ्य होने की स्थिति में झाड़–फूक या प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लेते है और इससे यदि

ठीक नहीं हो पाते है तब वे ऐसे व्यक्ति से इलाज कराते है जिसको मेडिकल से सम्बन्धित बहुत कम जानकारी होती है और उसके पास इससे सम्बन्धित कोई डिग्री भी नहीं होती है। स्थानीय भाषा में लोग उसे झोला छाप डाक्टर के नाम से पुकारते है। सरकारी या प्राइवेट अस्पताल पास में नहीं होने के कारण एवं इसका खर्च वहन नहीं कर पाने के कारण वहां इलाज नहीं करा पाते है।

अतः उपरोक्त अवलोकन से सिद्ध होता है कि हमारा प्रथम उपकल्पना सही है क्योंकि सोनभद्र क्षेत्र में रहने वाली जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। वे आज भी गरीबी में अपना जीविकोर्पाजन करने के लिए मजबूर है।

द्वितीय उपकल्पना : जनजातीय समाज के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका है।

जनजातीय समाज के सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विकास में पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका है के विवरण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं के पूर्वज प्रकृति पूजा करते थे जिससे उनके क्षेत्र में हरियाली बने रहे किसी प्रकार कोई समस्या उत्पन्न न हो और अकाल या सूखा न पड़े। सर्वाधिक उत्तरदाता आज भी अपने पूर्वजों का अनुसरण करते हुए प्रकृति की पूजा करते है क्योंकि इनके पूर्वजों की मृत शरीर को जंगलों में या नदी किनारे या पहाड़ी क्षेत्रों में दफनाए या जलाए जाते है इसलिए इनको मानना है कि इनके पूर्वजों के आत्माए इन प्राकृतिक क्षेत्रों में निवास करते है इसलिए वे इसके रक्षा के निरंतर प्रयासरत रहते है और समय–समय पर प्रकृति की पूजा करते रहते है जिससे इनके सामने प्राकृतिक अपादा न आए। सर्वाधिक उत्तरदाताओं के यहां प्रकृति से सम्बन्धित त्यौहार मनाया जाता है और इनके त्योहार मनाने से प्रकृति का किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता है। इनके द्वारा कर्मा त्यौहार मनाया जाता है और उस दिन विभिन्न प्रकार के पेड़ो का रोपड़ भी किया जाता है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं के यहां जन्म के समय, विवाह के समय व मृत्यु के समय विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान किये जाते है जिसमें ये अपने इष्ट देवी–देवता व पूर्वजों की पूजा करते है जिससे इनके बच्चे के ऊपर किसी प्रकार की किसी बुरी आत्मा का छाया न पड़े, विवाह के बाद इनका परिवार आगे बढ़े और अपनी परम्परा को बनाए रखे जो पूर्वजों से चला आ

रहा है और मृत्यु के उपरांत अनुष्ठान का तात्पर्य पूर्वजों की आत्मा को शान्ति मिले और वे इनकी हर प्रकार की समस्याओं से इनकी रक्षा करे। सर्वाधिक उत्तरदाताओं के यहां वर्षा होने से पहले या खेती करने से पहले पूजा की जाती है जिससे प्रकृति देवता और इष्ट देवता इनके प्रसन्न रहे और इनका फसल अच्छा हो और कोई चोरी करने आए तो चोरी नहीं कर पाए। खेती करने के उपरांत भी सभी लोगों के द्वारा पूजा की जाती है और भेट स्वरूप अनाज को चढ़ाया जाता है।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध होता है कि द्वितीय उपकल्पना सही है। क्योंकि सोनभद्र की गोंड़, खरवार और बैगा जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन उनके स्थानीय पारिस्थितिकी के साथ जुड़ा हुआ है तथा उनके यहां होने वाले विभिन्न अवसरों जैसे जन्म, विवाह, मृत्यु, बुआई, कटाई आदि पर होने वाले अनुष्ठानों और कार्यक्रमों में प्रकृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

तृतीय उपकल्पना : जनजातियों के विकास में सरकार की नीतियां आशिंक रूप सफल रही है एवं चतुर्थ उपकल्पना : जनजातीय समाज के विकास में सरकार के विकासमूलक योजनाओं में विरोधाभास है।

अध्याय छः "जनजातीय समाज एवं विकास नीति" के निष्कर्ष से स्पष्ट है होता है कि सर्वाधिक उत्तरदातओं को अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित योजनाओं के बारे में जानकारी नहीं है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं को सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए किए गए विकास उपायों के बारे में भी जानकारी नहीं है अर्थात जब किसी योजना के बारे में जानकारी ही नहीं होगी तो किसी भी योजना का लाभ ले पाना या मिल पाना बहुत मुश्किल है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं को मानना है कि जो भी योजनाए या कार्यक्रम उनके विकास के लिए सरकार द्वारा संचालित की जा रही है उससे उनके समस्याओं का समाधान नहीं हो पायेगा। सर्वाधिक उत्तरदाताओं को ये भी नहीं पता है कि सरकार उनके संस्कृति का संरक्षण करती है या नहीं अर्थात उन्होंने कभी इस प्रकार की चीजे अपने क्षेत्र में नहीं देखी कि उनके संस्कृति के सरक्षण के लिए कोई प्रयास कर रहा है। लगभग सभी उत्तरदाताओं को मानना है कि जितनी भी योजनाएं या कार्यक्रम उनके उत्थान के लिए चलाई जा रही है उससे उनका विकास नहीं होगा या वह पर्याप्त नहीं है।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध होता है कि तृतीय व चतुर्थ उपकल्पना सही है। जनजातीय समाज के विकास में सरकार की नीतियां आशिंक रूप से सफल रही है एवं इनके विकास में सरकार के विकास मूलक योजनाओं में विरोधाभास है।

सुझाव

यदि हम पारिस्थितिकी तंत्र का विनाश करते है तो हमारा भी विनाश निश्चित हैं क्योंकि मानव अन्य स्थलीय घटको की तरह इस पारिस्थितिकी तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा हैं। इसलिए यदि प्राकृतिक पर्यावरण में मानव द्वारा किसी विषम प्रकार का परिवर्तन करने का प्रयास किया जायेगा तो उसका निश्चित ही नकारात्मक प्रभाव मानव के सामने प्राकृतिक आपदा के रूप में आयेगा। यद्यपि जनजातीय समाज के विकास का जो पैमाना हैं वह संतुलित विकास को दर्शाता है। क्योंकि जनजाति समाज प्राकृतिक संसाधनों का उतना ही दोहन करते है जितने से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जनजाति समुदाय की पारिस्थितिकी तंत्र के साथ ग्राही एवं दाता का संबंध होता है, जो पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखते है। जनजातियों के विकास का प्रारूप संतुलित एवं सतत होता हैं। यदि एक शब्द में कहे तो जनजातियों को प्राकृतिक वैज्ञानिक कहा जा सकता हैं, जो अपने सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संतुलन के साथ–साथ प्राकृतिक संतुलन को भी बनाए रखते है। यदि उपरोक्त परिस्थिति को बनाए रखना है तो जनजातीय क्षेत्र में निरंतर हो रहे प्राकृतिक संसाधनों का असंतुलित दोहन को बंद करना होगा तथा साथ ही उनके पर्यावरणीय चेतना को जो हमें उनके संस्कृतियों में देखने को मिलता है। वह वर्तमान में धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है, उसको बचाने के लिए निरंतर प्रयास करना होगा जिससें वे अपनी संस्कृति को न भूले और उसको बचाए रखे क्योंकि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कही न कही उनके इस संस्कृति के माध्यम से पर्यावरण की रक्षा होती है। दूसरी तरफ मात्र योजनाओं या कार्यक्रमों को कागज पर ला देने से उनका विकास नहीं होगा। उसके लिए जमीनी स्तर पर केन्द्र और सम्बन्धित राज्य सरकार दोनों को एक साथ मिलकर उनके विकास के लिए काम करने की आवश्यकता है।